# साधना और व्यवहार

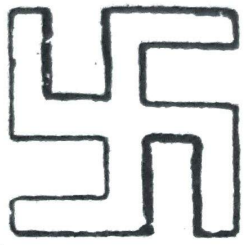

"जब दुनिया गाली दे, नाम रक्खे तो स्थिर
मधुर रहो—प्रेम तथा सेवा से भरे रहो।
अपनी सफाई देने की चेष्टा भी न करो।
सत्य स्वयं प्रकट हो जायेगा।
भीतर झाड़ू जरूर दो"।

स्वामी रामानन्द

'जिस प्रकार आन्तरिक परिवर्तन का प्रभाव बाह्य व्यवहार पर पड़ता है उसी प्रकार बाह्य व्यवहार का प्रभाव भीतर भी पड़ता है। x x x अप्रसन्न चित रहने की आदत को दूर करने में प्रफुल्ल बदन बनाए रखने का यत्न काफी सहायक होता है, इसमें संदेह नहीं। शायद कोई लोग इसे कपट समझेंगे, दम्भ कह कर पुकारेंगे। परन्तु यदि व्यक्ति अपने स्वभाव को सचमुच बदलना चाहता है, केवल मात्र दिखावे के लिये वैसा नहीं करता, तो यह दम्भ नहीं है। समय आने पर व्यक्ति क स्वभाव बदल जायेगा और यह उसका प्रकृति ही हो जावेगी।'

**स्वामी रामानन्द**

मूल्य 60 पैसे

# साधना और व्यवहार

स्वामी रामानन्द ब्रह्मचारी,
एम० ए० ।

जून
१९७४

साधना कार्यालय
बोसलपुर ।

**प्रकाशक :—**
साधन परिवार
साधना धाम
करखल

---

मुद्रक:
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स
हरध्यान सिंह मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली—११०००५

---

तृतीय संस्करण
१०००

मिलने का पता
साधना धाम
करखल

* श्रीराम *

# दो शब्द

यह पुस्तिका श्री स्वामी जी के पत्रों से लिए गए कुछ अवतरणों का संग्रह है जो संक्षेप में साधक के व्यवहार पर प्रकाश डालती है। समुन्नित व्यवहार साधना का अनिवार्य अंग है। व्यवहार से साधना प्रभावित होती है और साधना से व्यवहार। साधन क्रम में दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते चले जाते हैं। अतः साधक का व्यवहार कैसा हो, इसका सम्पूर्ण ज्ञान भी अनिवार्य है। इस संकलन में साधक को अपने व्यवहार का थोड़े से शब्दों में परिचय मिल सके इस ध्येय से मैं ने यह प्रयास किया है।

झांसी,
३०-४-५१

श्री गुरु चरणों में,
एक साधक

० श्रीराम ०

# साधना और व्यवहार

साधक अपनी वाणी तथा विचारों को ऐसा संयमित करने का प्रयत्न करता है कि कार्य में शक्ति का अपव्यय तो होता ही नहीं। बुरे संस्कार भी ग्रहण नहीं कर पाता। वाणी को मधुमयी, लोकहितकारिणी तथा आत्महितकारिणी बनाना उसका ध्येय होता है। प्रसन्नचित्तता को वह कभी नहीं खोता।

× × ×

हमारी वाणी मे इतनी मिठास और हृदय में इतना प्रेम हो कि हम दूसरों के दिलों को खींच सकें। हमारे जीवन में

इतना आकर्षण और व्यवहार इतना प्रभावशाली हो कि हममे मिलने वालों में स्वतः ही प्रभु के रास्ते पर चलने की, जिस रास्ते पर हम चलते हैं, उस पर चलने की, लालसा जग जाये। दूसरों के कहे का और विरोध का बुरा मानने से यह बात कभी सम्भव न होगी। वह भी अपने दृष्टिकोण से ठीक ही कहते हैं।

× × ×

आन्तरिक क्षेत्र से एक मधुरता की, प्रीति की तरङ्ग भी निकले। सभी के लिये, जो द्वेष करते हैं उनके लिये भी। फिर आप अपने मण्डल में महान् विजय लाभ करते चले जायेंगे। इसका अर्थ यह नहीं कि अकरणीय बात को भी किया जाय, परन्तु यह है कि उसके न करने में मधुरता हो, सहज भाव हो, प्रीति हो। दूसरे के भावों को, दूसरे पर होने वाले प्रभाव को, व्यक्ति अपने में प्रतिविम्बित देख सके। यही तो रास्ता उसके दिल में खोजने का, अनुभव करने का और उससे मिल जाने का है। सब हृदयों में अन्तस्तल में बजती हुई दिव्य सितार की झङ्कार से हमारे तार मिलें तो हम उसमें लीनता लाभ करते हैं। द्वेष में भी उसी प्रीति का प्रसाद मिलता प्रतीत होने लगता है। जल्दी ही प्रेम की द्वेष पर विजय होती है।

× × ×

मैं तो सौम्यता को चाहता हूं व्यवहार में भी। आप से बाहर होना मुझे प्रभु से बाहर होना दिखाई पड़ता है।

× × ×

जब दुनियां गाली दे, नाम रखे तो स्थिर रहो, मधुर रहो—प्रेम तथा सेवा से भरे रहो। अपनी सफ़ाई देने की चेष्टा भी न

करो। सत्य स्वयं प्रकट हो जायगा। भीतर झाड़ जरूर दो। घृणा नहीं करियेगा। भीतर भी विरोध न हो गाली देने वालों से। आपका प्रेम जीत जायगा। यह निश्चित है और यह भी तो साधना ही है। कैसी सुन्दर सहज साधना है। मां की कृपा से ही मिलती है।

× × ×

मुझे तो सेवा और प्रीति के भाव—आस पास वाले सभी लोगों के प्रति बिना किसी भेद भाव के मिठाई से कहीं अच्छे लगते हैं। जीवन ही माधुर्य-पूर्ण हो जाय। जो भी व्यक्ति हमें मिले उस पर हमारी छाप पड़े और हमारा सम्पर्क उसके लिये प्रसन्नता तथा शान्ति का कारण हो। परीक्षा तो पुस्तकों की होती है, यह विद्या जीवन की विद्या है—साधना है, प्रभु का पथ है।

× × ×

हमारी निर्मलता दूसरे को निर्मल कर सकती है। हमारा विशुद्ध प्रबल प्रेम दूसरे को जागृत कर सकता है। झुके परन्तु त्याग की दृष्टि से। ख़ुशी ख़ुशी से, परन्तु वासना के अभिभूत होकर नहीं, दूसरे के लिए जागृति का सामान बनने के लिए।

× × ×

सेवामयी प्रवृत्ति हो जानी चाहिए। व्यक्ति दूसरे के बारे में सोचे और उनसे इसी भाव को लेकर मिले कि मैं किसी के लिए कितना अधिक और कैसे उपयोगी हो सकता हूं। सेवा

धन से ही नहीं होती, तन, मन और बुद्धि तथा अन्तरात्मा से भी होती है।

× × ×

संसार में सुख से जीने का तरीक़ा है सभी को अपना समझना, परन्तु किसी से भी किसी प्रकार की आशा न रखनी। मनुष्य के भीतर विकार हैं, स्वार्थ है, लोभ है, रागद्वेषादि है, संकीर्णता है। इनके वश में न चाहता हुआ भी व्यक्ति जैसे बरतता है वैसे वरतता है। वह विकास की अधूरी स्थिति में है। क्या दोष दिया जाये मनुष्य को? वह लाचार है अपनी समझ से, और अपनी आन्तरिक स्थिति से। यदि कोई हमारी कसौटी पर पूरा नहीं उतरता तो कोई निराशा न होनी चाहिए। न जाने हमारी कसौटी में भी विकार भरा है—स्वार्थ है-सीमित दृष्टि है। न जाने हम में भी वही दोष है जो दूसरों में हमें दीखते हैं। यदि यह बात समझ में आजाय तो व्यक्ति को निराशा नहीं हो सकती किसी से भी। और इस पर भी यदि हम प्रभु की प्रतिमा पा जायें सभी में तो सभी हमारे हैं क्योंकि वह 'राम' जो हमारा है। यह दृष्टि-कोण मनन करने योग्य है। व्यवहारिक जगत् में विचित्र सौम्यता ला सकता है और हमें प्रभु की ओर ले जा सकता है।

सभी को प्रसन्न करने की चेष्टा का परिणाम यही होता है कि कोई भी प्रसन्न नहीं होता और होता है भी उचित। प्रसन्न करना हमारे कर्म का प्रयोजन न हो। अप्रसन्न होने का तो भय ही भीतर रहे। जो ठीक समझ आये करना चाहिये। वाणी में माधुर्य और हृदय में प्रेम सबके प्रति सदैव बना रहे।

सबके लिये मंगलकामना और सेवा भाव रहे। हम किसी से नाराज न हों, कोई हम से हो तो भले ही। ऐसे व्यवहार के परिणामस्वरूप लोग प्रसन्न रहने लगते हैं।

इसमें तो कोई सन्देह है ही नहीं कि भगवान् का नाता ही सर्वोत्तम है। वास्तव में उसी का नाता है और उसी के नाते से सभी नाते हैं। स्वतन्त्र रूप से हम किसी से नाता ही नहीं जोड़ेंगे, अन्यथा बन्धन होगा। प्रभु ने पुत्र बनाया है और उसी ने पति बनाया और उसी ने मित्र बनाया है। ऐसा मानना प्रभु के नाते से नाता मानना है। वही सच्चा प्रेमी है उसी के प्रेम की कणिका पा जाने से संसार में व्यक्ति को प्रेम का सागर दीखने लग जाता है। उसका प्रेम ही अथाह तथा अपार है।

आप को नया ग्रेड मिलेगा। उसमें से भगवान् के निमित्त जरूरत-मन्दों के लिये दान-कोष के रूप में थोड़ा सा मासिक निकालियेगा। उसे अलग जमा करियेगा। अपना मत समझियेगा। सोचिये कि इतना ही मिला है। बाकी प्रभु ने अपने लिये रक्खा है।

× × ×

जीवन में जो व्यक्ति अपना कर्त्तव्य करता है और दूसरों से मांग नहीं करता, जो कर्त्तव्य करने को सौभाग्य समझता है, धर्म समझता है, वह अपने को कहीं अधिक शान्त रख सकता है उन दूसरों की अपेक्षा जो माँग करते हैं। दूसरों में वास्तविक परिवर्तन करने का भी मैं इसे सौम्य उपाय समझता हूँ। यह सत्याग्रह का मूल नियम है ऐसा समझता हूं। पर इसके लिए

धैर्य चाहिये, सहनशक्ति चाहिये, हृदय में वास्तविक प्रीति और त्याग चाहिये। यह दम का काम है। हां, इतना अवश्य और, कर्त्तव्य को विवेक पूर्वक हमें सोचना होगा, दूसरों की इच्छा अथवा आशा को ही कर्त्तव्य समझ कर चलने से न अपना भला होगा और न दूसरों का ही।

× × ×

ढाह न जाग्रत हो दूसरों में बल्कि दूसरे उसके प्रति प्रीतिपूर्ण रहें। इसके लिए हमें प्रयत्न करना होगा। दूसरों का हित, दूसरों का दृष्टिकोण, दूसरों की रुचियां हमारे में प्रधानरूप से सामने आयें। अपनेपन को हम मिटा डालना सीखें। यह जानें कि दूसरा कैसे सोचता है? उसे क्या अच्छा लगता है? वह चाहता क्या है? वह तो पूज्य प्रतिमा है प्रभु की। बस आदर दें दूसरों को, प्रशंसा करें दूसरों के गुणों की और प्रीति करें दूसरों से। अपने हित का चिन्तन गौण हो। अपनी चर्चा कभी न हो यथा सम्भव अपने मान को मारने का तरीक़ा है दूसरों को आदर देना। हम इतना झुक जायें कि दूसरा हमें झुका ही न सके। वह जो लोगों का नेता होता है, वह दूसरों के पीछे चलना जानता है। जिसको पीछे चलना अभी अखरता है वह अभी नेतृत्व करना सीख नही पाया। इसी प्रकार से हम किसी से आगे बढ़ें तो दूसरों को यह भान न हो कि वह पीछे छोड़े जा रहे हैं। 'हम आगे ले जाये जा रहे हैं, वह सेवा के नाते आगे बढ़ता है'—ऐसा प्रतीत हो दूसरों को।

× × ×

व्यक्ति को दूसरों की जांच उनके दृष्टिकोण से करनी है।

ढोंग का प्रमाण हमें उसी के हृदय में पैठकर ढूंढना होगा। पूर्ण सहानुभूति अनिवार्य है अन्यथा हम समझ न पायेंगे। दूसरे हमें क्षमा करना भी सीखना है। हम में भी कमियां हैं और दूसरों में भी। हमें अपनी कमियों को भी सहन करना होगा क्योंकि एकदम से उनसे वास्तव में मुक्ति नहीं पाई जा सकती. कदाचित उनको दबाया जा सके। अतः हम दूसरों से कैसे आशा कर सकते हैं कि वह एकदम से अपनी कमियों को दूर कर लेंगे पहिले तो वे दीखती ही नहीं। चेतना के विकास की एक कोटि प्राप्त होने पर ही दीखती हैं और फिर ही प्रयत्न भी सम्भव है उन्हें दूर करने का। इस सीमा से हम सभी बद्ध हैं। अतः क्षमा ही करणीय है। जैसे हमें अपनी दृष्टि से देखने का अधिकार है, ऐसे ही सभी को है। जैसे हम उसका एकदम से अतिक्रमण नहीं कर सकते, वैसे ही दूसरे भी।

× × ×

अपने को भुलाकर, दूसरे की जगह रखकर देखना चाहिये। इससे अपने दुख सहज में भूले जाते हैं। तब समझ में आने लगता है कि जैसी बातें हमें बुरी लगती हैं, वैसे ही दूसरों को भी बुरी लगती होंगी। यदि हम अपने आप को भुलाकर दूसरे के दिल से दिल मिलादें और दिमाग़ से दिमाग़ तो ही पता चल सकता है। और यदि अपनी बुराई देखने और सुनने को तैयार नहीं तो यह रहस्य हम से सदैव छिपा ही रहता है। हम अपनी भीतर की बीमारी के कारण स्वयं ही घुलते रहते हैं।

× × ×

हर व्यक्ति के भीतर तरह-तरह के विकार रहते हैं, जिनमें। वह दबी रहता है। हमारे बरतने में वही भीतर का क्लेश टपक पड़ता है। जो भीतर होता है वह किसी प्रकार से उमड़ आता है। दिल में जरा ठण्डक पड़ जाती है। देखने वाला इतना ही जानता है कि उसमें ऐसा व्यवहार हुआ, इसलिए वह बुरा मान लेता है। वास्तव में वह सब कैसे और क्यों हुआ यह तो उसे दीखता ही नहीं और न ही वह जानने की चेष्टा करता है। यदि यह जानने की चेष्टा हो, उसे समझने का प्रयत्न हो तो आपस में ग़लत फ़हमियां कम हों।

× × ×

झुकना और अकड़ना-इन दोनों में से यदि किसी एक का ही सहारा लिया जाए तो गड़बड़ होती है। जीवन में मौके मौके पर दोनों की आवश्यकता है, अन्यथा ख़राबी ही ख़राबी है, दोनों हालतों में।

× × ×

ज़रूरत पड़ने पर बड़ों का विरोध भी करना चाहिए; परन्तु नम्रतापूर्वक और दृढ़तापूर्वक। उसमें भी क्रोध की गुञ्जाइश न रहे। क्रोध करने से तो हम अपनी हार मानने को तैयार हो जाते हैं। यदि हम सत्य पर हैं तो क्रोध की क्या आवश्यकता है?

द्वेष – कुटुम्बियों से? अपने व्यवहार को सुधारना चाहिए। हम दूसरों से विविध आशायें करते हैं, चाहते हैं वह भी हमारी तरह बर्तें, परन्तु यह सभी कैसे सम्भव हो? यह सब साधक साधिकायें तो हैं ही नहीं और न ही वे विकास की हमारी श्रेणी

पर हैं। ऐसा बन जाना चाहिए कि उनका व्यवहार हम में द्वेष पैदा न करे। सहानुभूति, प्रीति और सेवा का भाव जाग्रत करें। जितना समय भजन के लिए मिलता है उसी में सन्तोष करियेगा। प्रभु की इच्छा होगी तो और समय मिलेगा।

× × ×

व्यवहार का स्वर्ण सूत्र है Yield in things which do not matter, but never in things which do matter 'जो जीवन के सार से, जीवन के मूल्यों से सम्बन्ध रखती हैं वहाँ तो झुकना नहीं होगा परन्तु और जगह खुशी खुशी झुकना होगा।' परन्तु जहाँ नहीं झुकना वहाँ भी शील का परित्याग न होना चाहिए, विनय का अभाव न होना चाहिए। मुझे तो तुलसी रामायण का अयोध्याकाण्ड इस विषय में आदर्श लगता है। वैसे, यह सामान्य नियम है कि विशुद्ध प्रीति, सेवा, मधुरता तथा आत्म-त्याग की भावना दूसरों को पीछे लगा सकती है। यदि हम नें यह कुछ है तो हमारा रास्ता लोग स्वयं साफ़ करते चले जायेंगे और हमारे लिये तो यह सभी साधना होगी ही।

× × ×

जीवन में व्यक्ति की सभी इच्छायें पूरी नहीं होतीं। जितनी हमें अपनी इच्छायें प्रिय हैं उतनी ही दूसरों को उनकी। इसमे पढ़ा जाता है त्याग का स्वर्णमय पाठ जो जीवन को अमरालोक से द्योतित कर देता है। जिसने इस पाठ को पढ़ा है, वह स्वयं सुख में रहता है और जहाँ वह जाता है वहाँ वह सुख की वृष्टि करने लगता है।

× × ×

जरा दृष्टिकोण को ऊंचा करो, और विकसित करो कर्म-भोग भोगना ही है। वह किसी व्यक्ति के संयोग से—के निमित्त से प्राप्त होता है। दोष क्या देना किसी को? 'अमुक ऐसा ही हो जाये' यह भी तो लगाव है। इससे भी तो घोर बन्धन होता है। अपने को बदल डालना, यह है हमारा काम। क्रोध न हो कुढ़न न रहे-प्रेम हो, नितान्त प्रेम ही प्रेम। प्रभु के चरणों में रीति हो। अपने कर्त्तव्य का पालन हो, जितना हो सके भजन हो। जो भी दुःखादि (सांसारिक दृष्टि से) आयें वह मालिक की देन करके स्वीकार हों, ख़ुशी ख़ुशी, प्रभु की कृपा से हम बदल सकते हैं। दूसरों की चिन्ता न करके अपने को बदलने की चेष्टा करो। अपने भीतर के विकार निकल जावें फिर हम दूसरों के विकारों को निकालने में भी सहायक हो पावेंगे। अन्यथा हम भी जहाँ पर हैं वहीं रहेंगे और दूसरा भी। सहना सीखो ख़ुशी ख़ुशी, कुढ़न से रहित होकर-प्यार से। फिर वह बदल सकेंगे। प्रभु दयालु हैं। उसकी दयालुता है कि वह अपना मार्ग देकर व्यक्ति को दुःख सुख से ही परे कर देता है दुःख सुख रहता ही नहीं। फिर कर्म भोगने पड़ें तो क्या और न भोगने पड़ें तो क्या। उनमें परिवर्तन होगा या नहीं होगा, यह राम ही जानते हैं। आप इस विषय में सोच सोच कर अपना दिमाग़ ख़राब न करें। अपने को निर्मल, उज्जवल, प्रेम तथा भक्तिमय बनावें जिससे उनका स्वभाव आपको प्रभावित ही न कर पावे। जब हम रजोगुण को सहन करना सीख

जाते हैं तो परेशानी से परे हो जाते हैं।

× × ×

आध्यात्मिकता की माँग है क्षमा, उदारता। बिना इसके तो प्रेम होता ही नहीं। जिस हृदय में द्वेष हो सकता है, जहाँ किसी की भी अवहेलना हो सकती है, उसने अभी प्रेम के अर्थ नहीं जाने। पहले तो यह ही जानना होगा कि वह वास्तव में त्रुटि है भी या उसके बारे में हमारी मति का फेर ही है। यदि है भी तो क्या हम अपने को पूर्णरूपेण निर्दोष देखते हैं? क्या हमें अपने में ऐसी बातें नहीं दीखतीं जो हम दूर करना चाहते हैं पर वह होती नहीं। न जाने वह भी अपनी त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा कर रहा हो और अभी अपने को असमर्थ पाता हो। न जाने उसे अभी अपनी त्रुटियाँ दीखती ही न हों, जैसे सम्भवतः हमें अपनी कई त्रुटियाँ आज नहीं दीखतीं; आगे चल कर दिखाई दे जायेंगीं। हमारी मनोवृत्ति होनी चाहिये विनय की, गर्व की नहीं, सहानुभूति पूर्ण प्रेममयी सहायता की (यदि सम्भव हो) जिससे वह अपनी कमजोरी से ऊपर उठ पाये तिरस्कार की नहीं। तिरस्कार के द्वारा हम आत्महनन करते हैं और दूसरे की हिंसा करते हैं। तिरस्कार के द्वारा हम अपने प्रभु के रास्ते में रुकावट पैदा करते हैं तिरस्कार तो इस रास्ते की वस्तु है नहीं। हमें तो पहले से भी अधिक प्यार और सहानुभूति देनी चाहिये।

× × ×

जरा अधिक विश्वास रखियेगा, उस मालिक पर और अपने

पतिदेव पर। मैं जानता हूँ उनके जीवन की काली तरफ़ को भी परन्तु कल्याण इसी में है कि उसका विचार न किया जाय। आप प्रेम से, विश्वास से, श्रद्धा से, उनके भीतर जो कुछ उज्जवल है जसे जागृत कर सकतीं हैं। इसमें आपका हित होगा और समूचे परिवार का भी। और इसके विपरीत अविश्वास से, अप्रेम से, अधीरता से आप उनके कालिमापूर्ण संस्कारों का आवाहन करेंगी और वह सर्वथा अहितकर रहेगा। अपने पतिदेव पर श्रद्धा रखियेगा। श्रद्धा विश्वास के द्वारा तो पत्थरों से भी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं, वह तो मनुष्य हैं।

दूसरा, प्रभु पर विश्वास रखियेगा। यह आपकी परीक्षा है। प्रभु आपको बल दें इस में से अच्छी तरह निकल जाने का। आपका पातिव्रत्य भी तो आप से कुछ माँग करता है।

× ×

आपकी प्रीति, आपकी सरलता, आपकी क्षमा ही दूसरों में पश्चात्ताप की भावना जाग्रत कर सकती है। शब्द तथा युक्तियाँ तो प्रायः उलटा प्रभाव डाला करती हैं। आपका सम्पर्क उनमें स्वतः यह महान भावना उत्पन्न करे। उनके विकास की स्थिति में महान परिवर्तन कर दे और उन में प्रायश्चित्त की भावना जाग्रत हो, यही सुन्दर होगा। कहने में कुछ सौन्दर्य नहीं।

भगवान् की कृपा है। उसके आगे और झुकियेगा और सतत झुके ही रहियेगा। उसने पकड़ा है आपको दृढ़ करके। अपने को

ढीला कर दें। उस को पकड़ को स्वीकार करियेगा दूसरे जो समझते हैं समझें। वाणी मधुर हो। बात सोच समझ कर करें। प्रतिक्रिया रूपी बातें सभी गलत होती हैं—अनुचित होती हैं।

× × ×

आपको, रास्ता व्यवहार में, क्या बताऊँ ? खूब समझदार हो। मइय्या और भी समझ दे, और उज्जवल कर दे।

इस समय जो भीतर वाला कहता है लिख रहा हूँ। तर्क युक्तियाँ मेरे पास बिल्कुल नहीं। न जाने यह और फ़ितूर हो—पर लिखे देता हूँ।

माँ को सभी में देखना है। सभी में वह पहिले से प्रतिष्ठित है। क्या पुरुषों में क्या महिलाओं में ! विशेष भावना को जागृति के लिए आयु का प्रतिवन्ध हितकर होगा। जहाँ अवस्था से माँ बन सकने की सम्भावना हो वहीं पर उसे स्थापित करना मंगल मय होगा।

दूसरे प्रभाव को आज़माने के लिए किसी भी अनुभव के क्षेत्र में उतरना प्रभु-पथ में हितकर नहीं। समर्पण के रास्ते में रुकावट होती है। वुद्धि साधना का संचालन करती है, ऐसा करने से, माँ नहीं करती। 'कुछ चाहना नहीं और कहीं मे भागना भी नहीं'—यह स्वर्ण सूत्र है समपर्ण का। प्रयोजन को आगे रखकर अनुभूति के लिए प्रवृत्ति भी नहीं होना चाहिए।

तीसरा, मनुष्य से प्यार की माँग नहीं करनी । जहाँ हमारी भावना किसी और जगत् में हमें ले जा चुकी हो तब दूसरी बात होती है। तब हम मनुष्य से प्यार नहीं माँगते। प्यार देना चाहिए जितना दिया जा सके। यही आगे ले जाने की राह है।

× × ×

आपने 'बहिन' और 'मित्र' सम्बोधनों के बारे में पूछा है मेरी समझ में तो, केवल मात्र सम्बोधनों से कुछ नहीं होता। भीतर का भाव ही प्रधान होता है। परस्पर व्यवहार में सहज सरल तो होना ही चाहिए परन्तु ऐसा भी करना समुचित नहीं कि समाज को आपत्ति हो। आपके भीतर की स्थिति को दूसरे जानते नहीं हैं। और जब व्यक्ति अपने वस का न रहे, ऐसी ऊंची स्थिति में हो जाय तो कोई प्रश्न ही नहीं।

'माता' शब्द में मुझे वन्धन नहीं एक अद्भुत दिव्य सरसता दीखती है। मैं तो किसी को माँ कह पाता हूँ तो मेरे लिए तो साक्षात् वह महामाता ही बन जाती है। इतनी मधुरता तथा बल है इस छोटे से शब्द में। मित्रता में एक बराबरी होती है। झुकने का अवसर नहीं होता माँ में यह अवसर मिलता है। जितना आदमी झुकता है उतना ही भर जाता है उस महा माँ के अमूल्य प्रसाद से।

× × ×

माँ की लीला समझ में नहीं आती ! विस्मय क्या है ? अभी विश्वास करो, श्रद्धा करो। लीला माँ की है और मंगलमयी है। फिर, समझ में आयेगी। भीतर वाला बैल घिसा जा रहा है। भीतर की सफ़ाई भी हो रही है। क्या आपको स्वयं नहीं लगता था कभी (या शायद अब भी लगता है) कि खाली खाली है? लोगों को लगा तो क्या विचित्र बात ! और रहा चरित्र ! न जाने भीतर क्या क्या छिपा है। आगे आगे देखोगे। संस्कार कटेंगे तो भीतर के नक्शे समझ में आयेंगे।

यदि कोई कुछ कहता है तो कहने दो। उससे बनने बिगड़ने का तो है नहीं पर अपने बारे में ग़लत फ़हमी न रखनी चाहिये। जब तक व्यक्ति का पूर्णरूपेण अन्तःशोधन नहीं हो जाता, होता वह बदमाश ही है। शरीर में न सही मन में ही सही—संकल्प के जगत में ही सही।

× × ×

अमुक व्यक्ति की आदत बुरी है, वह हमें नहीं चाहता, वह बच्चों को नहीं चाहता, जब तक यह धारणायें भीतर हैं तब तक शान्ति न हो सकेगी। उसमें दुर्गुण भी हैं, परन्तु अच्छाई भी। वह हमेशा ही विरोध नहीं करता। कभी करता भी है तो आप लोगों के लिए यह अधिक बड़ा सत्य है। वह तस्वीर अपने सामने रखियेगा और उसी तरह से बरतियेगा।

× × ×

देखा, कितना बड़ा चोर है भीतर ? वह कहता है।'उनके विचार भी मेरी ओर से साफ नहीं, इसलिए मन नहीं करता' । इस उलझन को हल कर डालो। क्या इस विशाल संसार में हम किसी के प्रति ऐसे रह सकते हैं और प्रभु के सम्मुख दिल खोल सकते हैं साथ ही साथ ? झुको। भीतर देखो। कुसंस्कार दीखेगा। उसे स्वीकार करने से झुकना आता है। ऐसे निर्मल हुआ जाता है और जीता जाता है दूसरों को। आपके लिए यह साधना है।

× × ×

जीवन में नियमितता बड़ी बात होती है। इससे व्यक्ति सेवा करने के लिए पात्र बनता है। इससे व्यक्ति साधन में सौम्यता से, और वेग से अग्रसर होता है। पिशाच के बालों सा बिखरा जीवन दिव्यत्व का चिन्ह नहीं है। खाना-पीना, उठना-बठना, सोना-जागना, दूसरों से और अपने से व्यवहार, सभी जगह नियम होना चाहिए।

× × ×

हम कहीं आदेश नहीं करते सुझाते हैं। आदेश वहाँ करते हैं, जहाँ हमारे प्रति प्रीति आदेश को आदेश रहने ही नहीं देती, वह उसे प्रेम सन्देश बना देती है। सभी हृदयों का हम अपने में स्पन्दन सुन पायें और सभी मस्तिष्कों की तरंग पकड़ पायें, अपने में। तब हम दूसरों में अपने को, प्रभु को पा जायेंगे।

× × ×

आपको बोलते समय जरा यह जान लेना चाहिए कि इन शब्दों का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर अथवा व्यक्तियों पर क्या होगा। प्रभु के समीप होने की चाह से बोलने के लिए यह नितान्त आवश्यक है। बिना भीतर की आज्ञा लिए वचन मत दीजिये और यदि कुछ मुँह से निकल भी जाये तो उसे यथा सम्भव निभाना ही ठीक होगा।

× × ×

माँ पूजा की पात्र बनती है अपनी प्रीति, कोमलता और त्याग के कारण। स्त्रियों को ही मातृत्व के ऊंचे पद की प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त है। वह अपने मातृत्व के कारण ही बालक को सीधे रास्ते पर ले जा सकती हैं। परन्तु कभी-कभी स्थिति को ठीक न समझने से अथवा अपनी तबियत पर पूरा काबू न होने पर आपस में जैसा सम्बन्ध होना चाहिए स्थापित नहीं हो पाता। (आपके बेटे) के विषय में ऐसा ही हुआ है। यदि आप चाहती हैं कि यह सम्बन्ध सुधर जायें (और साधना की दृष्टि से तो यह नितान्त आवश्यक है) तो मैं आपको कुछ सुझाव देता हूँ :—

मौलिक बात है कि वह आपका आदर करने लगे और आपकी बातों के प्रति ग्रहणशील हो जाये। यह हो जाएगा तो उसको आप प्रभावित कर पायेंगी, अन्यथा नहीं। यह कैसे हो सकता है ?

उसको भला-बुरा कहना-धमकाना छोड़ दीजियेगा, बिल्कुल ही छोड़ दीजियेगा। वैसे उसको आयु की भी यही माँग है। यदि खीज जाये तो हट जाया करियेगा और सोचा करियेगा कि उसको प्रभावित करने का आखिर तरीका क्या होना चाहिए? आपने बुरा भला कहते-कहते तो बरसों बिता दिये और उस पर प्रभाव भी तो नहीं होता। पिता जी के पास शिकायत की धमकी भी आपको उसकी नज़र में हलका कर देती है। यदि आप उसे बुरा भला कहना छोड़ देंगी तो आगे के लिये रास्ता खुल जायेगा।

उसकी रुचियों और आराम का ख्याल तो रखना ही चाहिए। मेरा मतलब यह नहीं कि आप उसकी सभी बातों को पूरा करें। जो सम्भव हैं वह खुशी-खुशी पूरी करनी चाहिए, उसे शिकायत का मौका न मिले, और उसे यह ख्याल हो जाय कि माता जी उसका ध्यान रखती हैं।

जहाँ कोई बात ऐसी है जो निभ नहीं सकती, उसे अलग से शान्त भाव से समझाइयेगा। बजाय स्वयं इन्कार करने के कह दीजिये कि मुझे कोई आपत्ति नहीं पिता जी की अनुमति ले लो। अथवा घर के खर्चे की स्थिति समझा देनी चाहिए। आपस में संघर्ष का अवसर हो न आने दीजियेगा। जो बात उसके पिताजो को सूचित करने लायक हो सो कर दीजियेगा। परन्तु उसको धमको न देनी चाहिए। अपनी कोमलता तथा मधुरता से आप

उसको खूब प्रभावित करने लग जायगी, मुझे इस बात का विश्वास है।

वह जवान लड़का हैं। उसमें अनेक प्रकार की इच्छायें जग जानी स्वाभाविक हैं। उसे कुछ ढील भी देनी होगी और कुछ कसना भी होगा। उससे वाजिब बात की माँग करनी चाहिए। उसकी बात पर सहज में विश्वास करियेगा। हर बात पर अविश्वास करने से उसके चरित्र पर बुरा असर होता है। उसकी कभी प्रशंसा भी करनी चाहिए। यह प्रभावित करने का बहुत प्रबल तरीका है। और घर में उसे बड़ी जगह देनी चाहिए, वह बड़ा है बच्चों में। उसका थोड़ा आदर भी करना चाहिए। इससे धीरे-धीरे वह दूसरों का आदर करना सीखेगा। आपको भी आदर देने लगेगा। अपनी जिम्मेदारी को अनुभव करने लगेगा। ऐसी बात जिससे उसे अवहेलना की प्रतीति हो न करनी चाहिए। कहीं उसका दिल दुःख जाय तो उसका इलाज भी करना चाहिए। यदि इस प्रकार से घर से उसे तृप्ति होने लगेगी तो वह बिगड़ेगा नहीं। आपकी प्रीति की रज्जु से बंधा सीधे रास्ते पर चला जायेगा।

उसे खराब कहने से, उसकी ख़राबियों का ख्याल करने से, धमकाने से कुछ बनेगा नहीं—आपने आगे भी देख ही लिया है।

वह आपका सबसे बड़ा बच्चा है। वह जब पैदा हुआ था तो आपको आयु भी कम थी। उसको भली भांति सम्भालना भी तो आपको न आता होगा। उसके प्रति एक खीज का सा भाव-बन्धन का सा भाव बस का न होने का भाग-भीतर बन जाना अस्वाभाविक नहीं। उस भाव के कारण भी वह बेबस का सा आपको लगने लगा है। परन्तु जो उपाय मैंने ऊपर लिखे हैं यदि वह आप बरतेंगी तो आपको सफलता होगी, मुझे इस बात का विश्वास है। धैर्य से चलना होगा। महीनों में नतीजा निकलेगा।

× × ×

हमें तो दूसरों पर प्रेम के द्वारा ऐसी विजय प्राप्त करना है, जिससे बालक और भी आगे बढ़ सकें। इस प्रकार के विरोध का बालकों के जीवन पर भला असर नहीं होता। निजी जीवन की इस सम्बन्ध में जो आन्तरिक गुत्थी है। पिता जी से प्रतिरोध-इसे पहचान कर सजग होकर चलना अच्छा होगा। हम किसी प्रकार के अनावश्यक अनिवार्य प्रतिरोध को उठायेंगे ही नहीं। उठायें तो दूसरे उठायें। उसे प्रतीत करें तो दूसरे प्रतीत करें। इस प्रकार से शक्ति का अपव्यय नहीं होता। कामीपन किसी विशेष परिस्थिति में लाभदायक हो सकता है परन्तु है तो वह ऋणात्मक ही। धनात्मक निर्माण के लक्ष्य को लेकर ही चलना

अच्छा रहता है। जहां जरूरत हो वहां विरोध भी हो, परन्तु यह गौण रहे। सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन की सौम्यता मुझे इसी में दिखाई पड़ती है।

दूसरी बात रही आलोचना की। हम आलोचना करने से दुनियाँ को कभी न रोक पायेंगे। महात्मा गांधी के भी कड़े आलोचक हैं। महात्मा ईसा तथा बुद्ध की भी आलोचना न हुई हो यह हम कल्पना नहीं कर सकते। मेरे भी जीवन की लोग आलोचना करते हैं और यह स्वाभाविक है। हम किसी को रोक नहीं सकते। फासिस्ट देश रोकने की कोशिश करते हैं। परन्तु वह है भयंकर बात। हम स्वयं आलोचना करते हैं और अपनी समझ के मुताबिक ही। इसी प्रकार से सभी करेंगे और इसमें मुझे कुछ ख़राबी नहीं दीखती। इसमें यह भी समझ लेना चाहिये कि जितने हमने विरोधी बनाए हैं उतने ही अपने कड़े आलोचक भी। समझदार कार्यकर्त्ता कम से कम विरोधी बनाता है। यह उसकी समझदारी की पहचान है। सफलता बहुत हद तक इस पर भी निर्भर रहती है। अतः हमें दूसरे की आलोचना को धैर्य से, शांति से तथा प्रीति से सुनना सीखना है। उस आलोचना के कारणों की दूसरों के मनोसंस्थान तथा बाह्य घटनाओं में पढ़ना

है और उसका मूल्य आंकना है। उससे यदि हम कुछ सीख सकें तो अवश्य सीखना है। जहां हमें आलोचनाओं को ही आदर्श मानकर नहीं चलना, वहां उनका एकान्त तिरस्कार तथा घृणा तो करनी नहीं है।

× × ×

आपने जीवन के प्रति, अपने सम्बन्धों के प्रति, अपने दृष्टि-कोण को अभी नहीं बदला है। वही मोह अभी भीतर भरा है। अध्यात्म जगत में आना हो तो सभी नातों को भगवान से ही स्वीकार करना होगा। पति भी पति है क्योंकि उसने बनाया है। पति की सेवा, प्यार सभी प्रभु का पूजन ही समझना होगा। मुझ पर नजायाज़ अधिकार जमाया जाता है अथवा जमाया गया है, इस भाव को तो निकाल देना ही होगा। जो हुआ सो प्रभु के किये से हुआ और जो होगा उसी की अनुमति से होगा। मनुष्य से दबा हुआ प्रतीत करना तो उस नाते में से भगवान को निकाल देना है, उसे लौकिक ही समझना है।

परिवार में मां का एक स्थान होता है। मां होने के नाते उसका बच्चों के प्रति एक कर्त्तव्य होता है। वह भगवान् का पूजन ही है, ऐसा समझियेगा। वह बन्धन न समझें। उसे पजन समझ

रक करने से और बन्धन बंधता है। जीवन को सभी परिस्थितियों मे प्रभु को देन समझो। उन्हें पूजन समझकर स्वीकार करो।

और दूसरों को उदारता की दृष्टि से देखो। यदि जान बूझ कर कोई गल्ती करे—यदि हमें ऐसा लगे तो भी क्षमा किया जा सकता है। उसके लिए दिल में दर्द रखने से हम अपने भीतर धब्बा लगाते हैं, संस्कार का बन्धन बांध लेते हैं। यदि उन्होंने जान बूझ कर भी ऐसा बरता हो तो आपका अपने हित में इसे भुलाना ही ठीक है। पर मुझे तो यकीन है कि हमारी संकुचित भावना से हमें केवल मात्र भ्रम हो जाता है। जो बात दूसरे के दिल में होता नहीं, उसकी हम कल्पना कर लेते हैं।

एक सोने का सा नियम बताता हूं। जहां भी दिल में कसक पहुंचे वहीं पर खोजो। सोचने में, प्रतीत करने में कहीं गलती हो रही है। हमने अभी प्रभु को उस कोने में बसाया नहीं है, जहां ठेस पहुंचती है। अपने भीतर के प्यार को, सारी इच्छा और आकांक्षा को, सारे मानापमान को भगवान के चरणों में उड़ेल देना होगा। तब आप अनन्य हो पायेंगी, तभी सारे बन्धन कट जायेंगे, भीतर से तब आप खाली हो जायेंगी, हल्की हो

आवेगी, वास्तव में स्वतन्त्र हो सकेंगी।

× × ×

जो काम आपने सम्भाला है। इसमें अतिशय उत्साह न लगाइये। मर्यादा में रहकर काम करियेगा काम करने में जो आनन्द है उस आनन्द की आसक्ति से ऊपर उठना है। वही तो आदमी को काम के पीछे पागल कर देती है। चेष्टा करियेगा कि काम इस प्रकार एडजस्ट हो जाये कि आपका व्यक्तिगत प्रोग्राम, स्वाध्याय, भजन-पाठ और व्यायाम ठीक चल सके। आपका खाना पीना भी यथा सम्भव ठीक रह सके। काम का जीवन में एक स्थान है। उससे अधिक उसे महत्व देना उचित नहीं। अपने को काम के साथ चिपकने नहीं देना। उसका मोमेन्टम आपको वहां न ले जाये। दिमाग़ पर जब काम का भूत सवार होने लगे और भगवान का स्थान लेने लगे तो उसी समय काम को बन्द कर दें। भीतर सुलझा लेना चाहिए। उसके आगे माथा टेकने से भीतर संतुलन आ जायेगा। तब काम को आप शान्ति-पूर्वक कर पावेंगे।

कर्मयोग ठीक मनोवृत्ति से तथा ठीक प्रकार से काम करना है। कर्म एक साधना है। कर्म के इसी रूप को लेकर कार्य में

उतारू होना चाहिए। उसकी सफलता और विफलता, उसका पूरा होना अथवा न होना, उसका परिणाम, हमारे भीतर हलचल पैदा न कर सके। करने में भी जोश (उबाल) न आ पाये। भीतर हमेशा सम रहते हुए काम हो सके ऐसा करना सीखने के लिए प्रभु के आगे झुका रहना होगा। उसी को जीवन में और विश्व में सबसे बड़ा समझना होगा। उसी के लिए पूजा समझते हुए कार्य करना होगा।

× × ×

घृणा के भाव के लिए तो साधक के अन्दर गुञ्जाइश हो हो नहीं सकती, भले ही दूसरा व्यक्ति विकास की दृष्टि मे कितना नीचा अथवा बुरा क्यों न हो। घृणा रहने से तो हम दूसरे को समझ ही न पायेंगे, भगवान् का पहिचानना तो दूर रहा।

× × ×

व्यक्ति की दुर्बलतायें उसके विकास की अपूर्णतायें मात्र हैं। और वह केवल मात्र बातों के कहने से पूर्ण नहीं होती। पहले तो उनका अपने मे होना ही समझ में नहीं आता, जब तक हमारी चेतना एक विशेष कोटि के नैर्मल्य को लाभ नहीं कर लेती। उनके भान होने पर संस्कार का बल आ दबाता है। संघर्ष होता है हमारे भीतर और यदि वह काफ़ी समय बना

रहता है तो वह अपने में परेशानी बन जाता है। हमेशा डूबती हुई आशा साधारण व्यक्ति के अन्तस्थल का नित्यनूतन इतिहास है। ऐसी अवस्था में मनुष्य को जांचना, तोलना, दोषी ठहराना तो मुझे बास्तविकता से परिचय की कमी को बताते प्रतीत होते हैं। हम ग़लती करते हैं-हम रोगी होते हैं। हमारे पैतृक संस्कार भी तो वजन रखते हैं। हमारा सारा पिछला विकास भी तो हम पर लदा है। हम चाहते हुए भी क्षण भर में कैसे उससे मुक्त हो सकेंगे-हम रोगी होते हैं। सहानुभूति तथा सहायता का व्यवहार ही रोग की रुग्नता की मांग है और उसे हमें उदार भाव से देना चाहिए। सम्भव है वह फिर वही ग़लती करे और फिर बीमार हो। मानवता की मांग यही है कि हम निष्ठुर न हो जायें। कष्ट तो उसे भी होता ही है और वह अपनी दुर्बलता के कारण ही फिर गिरता है। परन्तु हमारी निष्ठुरता तो हमें भी हृदयहीन कर देगी।

अपने दिल की सफ़ाई अपने दिल की चैन के लिए आवश्यक है। हम अपूर्ण हैं। जिस दुनियां में हम रहते हैं इसलिए वह भी अपूर्ण है। क्षमा और दिल से क्षमा, यही आवश्यक है। यदि हमसे किसी का कुछ हित हो सके तो कर दें अन्यथा मौन मानसिक तथा वाचिक, उसी में भला है। सबक़ सिखाने में प्रायः हम धोखे में रहते हैं। होता यह है कि दूसरे में तो नई

चेतना स्थाई रूप से उदित नहीं होती, हम ग्रन्थो को भीतर पाल लेते है। अपने को दूसरे के स्थान में रखकर सोचियेगा। अपने भीतर भी तो देखना है। न जाने हमारे भीतर क्या क्या नहीं छिपा है जिसे आज हम जानते नहीं और किसी समय में हम जान पायेंगे। जितना हम अपने को जानेंगे उतनी ही नम्रता प्रकट होती चली जायगी।

× × ×

दुनियां को पूरी तरह से खुश किया ही नहीं जा सकता। कुम्हार के गधे वाली कहानी सुनी होगी। वही, जिसमें कुम्हार कुम्हारिन उनके बेटे और गधे की चर्चा है। सभी प्रसन्न रह सकेंगे, यह तो असम्भव प्रतीत होता है। हम किसी को अप्रसन्न करने की चेष्टा न करेंगे। वह बातें जो जीवन में महत्व नहीं रखतीं उनके विषय में दूसरों के लिए झुकना ही चाहिए, परन्तु जो बातें जीवन में महत्वशाली हैं उनके विषय में झुकना ग़लत होता है। अपने को दूसरों की इच्छा का खिलवाड़ बनाकर न तो व्यक्ति स्वयं ही अध्यात्म-पथ पर चल सकता है और न दूसरों के लिए हितकर हो पाता है। वास्तव में अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चले जाना है। अपने प्रभु के प्रति-अपने प्रति सच्चा रहना है। दुनियां के ग़लत पैमानों से अपने को माप कर चलने की

चेष्टा नही करनी चाहिए। यदि कभी तन जाना ही पड़े तो तन जाना चाहिए। हर बात में झुकना गलत है, मैंने ऊपर लिखा ही है। भीरू बनकर तो यह रास्ता नही चला जाता है।

× × ×

आपका अहं ही तो आपसे इस तरह की भयंकर सटपट करवाता था। अभी और परखना होगा अपने को। आप ढूंढेंगे तो सम्भवत: अपने हृदय में द्वेष की चिंगारियां भी पायें, प्रतिशोध की भावना भी कई बार आपको कर्म प्रवृत्त कराती रही होगी। सच्ची विनय साधना के लिए अनिवार्य है।

॥ इति ॥

"गृहस्थ तो कीच है, दलदल है, यहा धर्म कर्म असम्भव है—यह ध्वनि समाज में सभी ओर गूंजती दीखती है। x x x गृहस्थ की अवहेलना करनी वास्तव में अपनी अवहेलना करनी है। अपनी कामुकता को घोषित करना है वह हमारे लिये कीचड़ है क्योंकि हम उसको कीचड़ बनाते हैं। x x x काम को वैवाहित जीवन का लक्ष्य बनाकर चलने का अर्थ है गृहस्थ जीवन की सौम्यता और सौख्य से हाथ धो डालना। सुख के लिये गृहस्थ में प्रवेश करने का तात्पर्य होगा। गृहस्थ को जजाल समझने लग जाना और भाग खड़े होने की तैय्यारी करनी। x x x "गृहस्थ एक धर्म कृत्य है, यह एक भागवत कृत्य है, यही सामने रखना होगा।"

**स्वामी रामानन्द**

(जीवन रहस्य से)